R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2018-20

मूल्य-4 रुपये, वर्ष-21, अङ्क-6 जून 2021 1

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ०प्र०) का
मासिक मुख समाचार पत्र

मङ्गलायतन

जून का E - अंक

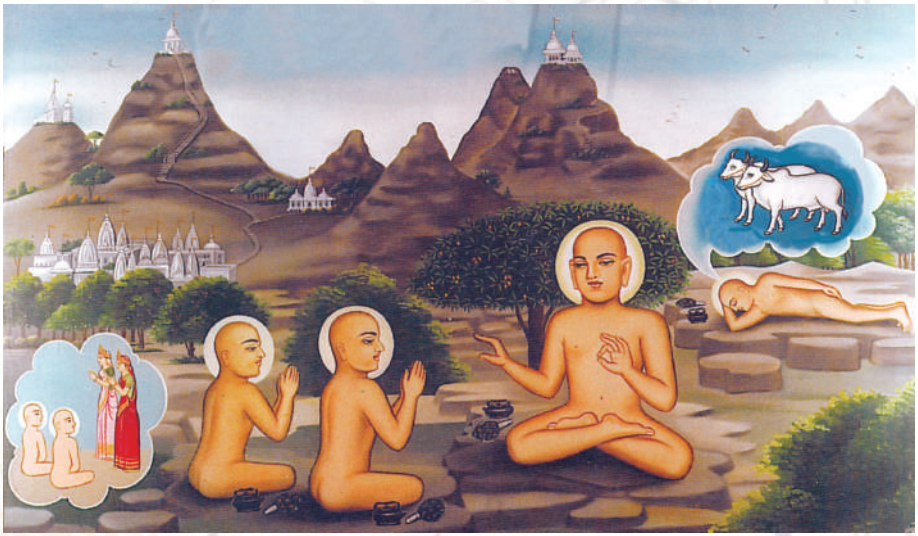

आचार्यश्री धरसेन दोनों मुनि भगवन्तों को ज्ञान देते हुए

श्रुतपंचमी महापर्व गोष्ठी की झलकियाँ

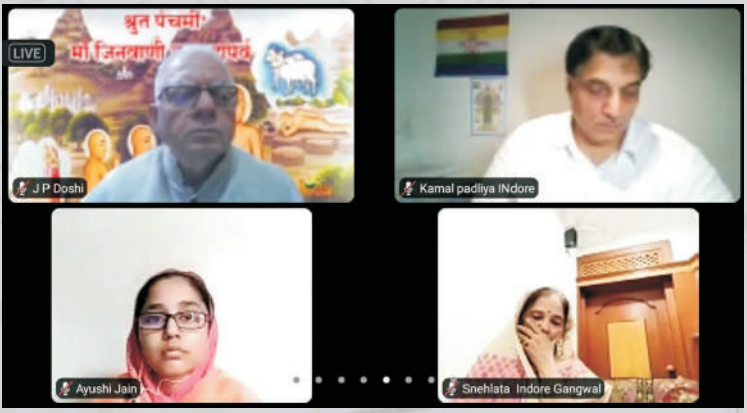

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-21, अङ्क-6 (वी.नि.सं. 2547; वि.सं. 2077) जून 2021

धन्य मुनीश्वर आतम .....

धन्य मुनीश्वर आतम हित में छोड़ दिया परिवार,
कि तुमने छोड़ा सब घरबार।
धन छोड़ा वैभव सब छोड़ा, समझा जगत असार,
कि तुमने छोड़ दिया संसार॥ टेक॥

काया की ममता को टारी, करते सहन परीषह भारी।
पंच महाव्रत के हो धारी, तीन रतन के हो भण्डारी॥
आत्म स्वरूप में झूलते करते निज आतम उद्धार,
कि तुमने छोड़ा सब घरबार॥2॥

राग द्वेष सब तुमने त्यागे, बैर विरोध हृदय से भागे।
परमातम के हो अनुरागे, बैरी कर्म पलायन भागे॥
सत् सन्देश सुना भविजन को करते बेड़ा पार,
कि तुमने छोड़ा सब घरबार॥3॥

होय दिगम्बर वन में विचरते, निश्चल होय ध्यान जब करते।
निजपद के आनन्द में झूलते, उपशम रस की धार बरसते॥
मुद्रा सौम्य निरखकर मस्तक नमता बारम्बार,
कि तुमने छोड़ा सब घरबार॥4॥

साभार : मंगल भक्ति सुमन

संस्थापक सम्पादक
स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़
मुख्य सलाहकार
श्री बिजेन्द्रकुमार जैन, अलीगढ़
सम्पादक
डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन
सह सम्पादक
पण्डित सुधीर जैन शास्त्री, मङ्गलायतन
सम्पादक मण्डल
ब्रह्मचारी पण्डित ब्रजलाल शाह, वढ़वाण
बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर
श्रीमती बीना जैन, देहरादून
सम्पादकीय सलाहकार
पण्डित रतनचन्द भारिल्ल, जयपुर
पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन
मार्गदर्शन
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़

इस अङ्क के प्रकाशन में सहयोग-

श्रीमती सूर्याबहिन

धर्मपत्नी

महेन्द्रशाह 'मन्नूभाई'

13 - एशले रोड, नार्थटन

हीथ, सरे - सी.आर. 7 6

एच.डब्ल्यू. (यू.के.)

क्या - कहाँ

समयसार..... 5
श्री समयसार नाटक..... 12
आत्मा कौन है..... 21
आचार्यदेव परिचय..... 29
प्रेरक प्रसंग..... 31
जिस प्रकार..... 32
समाचार-दर्शन..... 33

शुल्क :
वार्षिक : 50.00 रुपये
एक प्रति : 04.00 रुपये

समयसार

[पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन]

आज समयसार का दिवस है। स्वाध्यायमन्दिर में श्री समयसारजी की प्रतिष्ठा को (इस 2022 की साल में) 28 वर्ष पूर्ण होकर 29वाँ वर्ष प्रारम्भ हुआ। समयसार शास्त्र श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव द्वारा रचित, अलौकिक, जैनदर्शन के मर्मरूप शास्त्र है। श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव लगभग संवत 49 में हुए। वे एक दिगम्बर सन्त थे, छठवें-सातवें गुणस्थान की दशा उनके अन्तर में प्रगट हुई थी; वे पंच परमेष्ठियों में सम्मिलित हुए थे। वे भगवान सीमन्धर परमात्मा के पास महाविदेह में गये थे। उन्हें भगवान का विरह हुआ... अरे रे! महावीर परमात्मा की उपस्थिति नहीं, साक्षात् तीर्थंकर का योग नहीं... ऐसे समय में सीमन्धर भगवान का स्मरण हुआ। उस समय के शासन में वे यहाँ के मुख्य आचार्य थे। एक बार उन्हें तीर्थंकर के विरह का परिताप हुआ और...

अरे रे! सीमंधरनाथ का विरह हुआ इस भरत में...

ऐसे विचारों की श्रेणी में चढ़ते ही महाविदेह में जाने का योग बना। वर्तमान में जो सीमन्धर परमात्मा महाविदेह में विराजमान हैं, वे ही उस समय विराजमान थे। वहाँ कुन्दकुन्द प्रभु गये और आठ दिन तक भगवान की वाणी सुनी; और ज्ञान की निर्मलता बढ़ गयी। वहाँ आठ दिन रहकर फिर भरतक्षेत्र में पधारे और पश्चात् समयसारादि महान परमागमों की रचना की... साक्षात् आत्मा का अनुभव, प्रत्यक्ष भगवान की भेंट तथा मुनिदशा के चारित्र में झूलते-झूलते उन्होंने इन अलौकिक शास्त्रों की रचना की है। अनन्त काल से जो तत्त्व समझना रह गया है, वह इसमें समझाया है। दूसरे बहुत से शास्त्रों में वैसा रहस्य भरा है, परन्तु समयसार तो उनमें सर्वोत्कृष्ट है।

अहा! यह समयसार ऐसा अलौकिक सर्वोत्कृष्ट शास्त्र है। आज उसकी प्रतिष्ठा का दिन है। उसके मंगलाचरण में कहते हैं कि—

नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते।
चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावांतरच्छिदे॥

अहा! आत्मा की शान्ति के पथ पर विचरनेवाले आत्माओं को मंगलमय ऐसा यह श्लोक है। अप्रतिहत भाव से शुद्धात्मा को नमस्कार। आचार्यदेव स्वयं साधक हैं, स्वर्ग में जाकर वहाँ से मनुष्य होकर मुक्ति प्राप्त करना है; उन्होंने यह अप्रतिहत मंगलाचरण किया है।

अहा! चैतन्य के स्वरूप का कैसा वर्णन करते हैं! मैं समयसार को नमस्कार करता हूँ। समयसार अर्थात् शुद्ध आत्मा। जड़कर्म तथा भावकर्म से रहित जिसका स्वरूप है, ऐसे शुद्ध आत्मा को मैं नमस्कार करता हूँ। वर्तमान आत्मा का ऐसा शुद्ध स्वरूप है, उसे जानकर उसी का आदर करता हूँ, उसके अतिरिक्त अन्य का आदर नहीं करता। शरीर, जड़कर्म, या संसार से आत्मा रहित है। वर्तमान में भी शुद्धस्वभाव की दृष्टि से आत्मा में शरीर, जड़कर्म या संसार नहीं है। एक समय की पर्याय में जो विकार है, वह त्रैकालिक आत्मा का स्वरूप नहीं है। ऐसे शुद्ध आत्मा को नमस्कार करना—उसकी रुचि, ज्ञान करके उसमें एकाग्र होना, सो मंगलाचरण है। त्रैकालिक चैतन्यस्वरूप को ज्ञान में लेकर एक समय के संसार का अभाव करते हैं और अनादि से जो स्वभाव सत है, परन्तु जिसे अनादि से श्रद्धा में नहीं लिया था, उसे श्रद्धा में लेकर नमस्कार करते हैं।

देखो, समयसार अर्थात् शुद्ध आत्मा! वह आत्मा संसार रहित है और शरीर, कर्म तो परपदार्थ हैं। ऐसे शुद्ध आत्मा को लक्ष में लेकर उसकी रुचि तथा उसे नमस्कार करना चाहिए। मैं एक आत्मा हूँ, मैं सिद्ध होने के लिये निकला हूँ, मेरे आत्मा में संसार नहीं है– ऐसा कौन कहता है ? आत्मा के शुद्ध स्वभाव को जिसने दृष्टि में लिया, वह जीव कहता है कि मेरे स्वरूप में संसार नहीं है, कर्म आदि नहीं हैं; एक समय का विकार मैं नहीं हूँ। पर्याय में होने पर भी उसका पर्यायदृष्टि में अभाव करते हैं। जहाँ चैतन्य भगवान अपना मंगलाचरण करने को तत्पर हुआ, वहाँ वह कहता है कि जिस संसार

का मैं, अन्त करना चाहता हूँ, वह मेरे स्वरूप में नहीं है। यदि संसार अपने स्वरूप में हो तो उसका अन्त नहीं हो सकता। संसार कहाँ है ? विकारी पर्याय में संसार है, परन्तु बाह्य में संसार नहीं है, और स्वभाव में भी संसार नहीं है। परवस्तु तो आत्मा के स्वभाव में नहीं है, किन्तु पर का ममत्व करता है, वहीं संसार है और स्वभाव की दृष्टि में उस संसार का भी अभाव है।

मेरा संसार पर में नहीं है, और संसार मेरा स्वभाव नहीं है। मैं आनन्दकन्द स्वभाव हूँ, संसार मैं नहीं हूँ। जिसे संसार दु:खदायक लगा हो और उसका अन्त करके मुक्त होने की जिज्ञासा जागृत हुई हो, वह ऐसा विचार करता है कि अहो! मैं शुद्ध आत्मा हूँ, क्षणिक ममत्व की वृत्ति, वह त्रैकालिक चैतन्यतत्त्व में नहीं है। त्रैकालिक शुद्धस्वभाव से च्युत होकर 'पर सो मैं'—ऐसी मान्यता, वह संसार है। जो संसार को अपना स्वरूप माने, वह उससे कैसे छूटेगा ? इसलिए प्रथम स्वभाव की दृष्टि से संसार का अभाव करते हैं। देखो, इस मंगलाचरण में मुक्ति की मिठाई बाँटी जा रही है.... पहली ही बार में ऐसा निर्णय कर कि मैं त्रिकाल चैतन्यतत्त्व हूँ; मेरी त्रैकालिक वस्तु में संसार नहीं है। पर्याय में रागादि होने पर भी वह मेरे स्वरूप की वस्तु नहीं है। अहो! मैं अपने ज्ञानानन्द समयसार भगवान को नमन करता हूँ, शरीरादि को या विकार को नमन नहीं करता। मेरा आत्मा नोकर्म से भिन्न है, जड़कर्म से या विकार से भी रहित ऐसे अपने चैतन्य भगवान समयसार को ही मैं नमन करता हूँ—इस प्रकार धर्मात्मा की दृष्टि का विशेष झुकाव शुद्ध स्वभाव में रहता है। देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का भाव आये, परन्तु उस समय स्वभाव की दृष्टि नहीं छूटती। आचार्य भगवान मंगलाचरण में कहते हैं कि अरे जीवो! यदि तुम्हें संसार दु:खरूप लगता हो और उसे मिटाकर परमानन्द मुक्तदशा प्राप्त करना हो तो प्रथम ऐसे स्वभाव का निर्णय करो। अनादि से बाह्य में ढल रहा था और विकार की तथा पर की विनय करके वहीं नमता था, उसके बदले अब अन्तर में ढलता हूँ, कि अहो! मैं चिदानन्द आत्मा हूँ, अब मैं अपने अन्तर स्वरूप में ढलकर उसी

को नमन करता हूँ, अब मैं पर की विनय छोड़कर चैतन्य की विनय करता हूँ। देखो, इस प्रकार चैतन्य को जानकर उसकी महिमा और विनय करना, वह धर्म का महामंगलाचरण है।

जिसे परवस्तु में सन्तोष है, संसारा में सुख भासित होता है—ऐसे जीव की तो बात नहीं है। जिसे समस्त संसार दु:खरूप भासित हुआ है, उससे कहते हैं कि तू राग का सत्कार छोड़कर चैतन्य का सत्कार कर। चैतन्य की रुचि करके जो उसमें झुका, उसने मंगलाचरण किया है।

देखो, समयसार का यह अलौकिक मंगलाचरण होता है। मंगल का प्रारम्भ कहाँ से होता है?—किसी भी परपदार्थ से मुझे लाभ होता है, ऐसी मिथ्याबुद्धि में जो पर का आदर करता है, उसे छोड़कर चिदानन्दस्वभाव ही मुझे लाभदायक है—ऐसी रुचि-महिमा करके उसमें झुकना-ढलना-परिणमित होना, वह अपूर्व मंगलाचरण है। जहाँ ऐसे स्वभाव की ओर के सत्कार का भाव प्रगट हुआ, वहाँ बीच में शुभराग आने से देव-गुरु-शास्त्र की ओर के सत्कार का भाव आये बिना नहीं रहता। स्वभाव का सम्मान छोड़कर अकेले पर के ही सम्मान में जो अटका, उसे तो वस्तु का भान नहीं है।

अहो! अनादि से मैंने अपने स्वभाव का सत्कार छोड़कर पुण्य-पाप का तथा पर का सत्कार किया, उसके बदले अब मैं शुद्ध चैतन्यस्वरूप का ही सत्कार करके उसमें नमता हूँ—उसमें ढलता हूँ। इस प्रकार जो अन्तर में ढला, उसे स्वभाव से हटकर पर के सत्कार-बहुमान का भाव नहीं आता।

समयसार तो अपना शुद्ध आत्मा है। सर्वज्ञ भगवान ने एक समय के विकार से रहित जो त्रैकालिक शुद्ध स्वभाव देखा है, उसका नाम 'समयसार' है। वह समयसार कैसा है?—कि जगत में सत्भावरूप पदार्थ है, स्वभावभूत वस्तु है, अभावरूप नहीं है। देखो, स्वयं को ऐसे चैतन्य की ओर उन्मुख करके आचार्यदेव मंगलाचरण करते हैं।

'भाव' है अर्थात् शुद्ध आत्मा सदा 'सत्' पदार्थ है, उसमें संसार अभावरूप है। चैतन्य भगवान में पर का अभाव है। चैतन्यरूप से स्वयं

भावरूप है। ऐसे भावरूप शुद्ध आत्मा का आदर करना, उसका नाम धर्म है।

प्रत्येक आत्मा ऐसे शुद्धस्वभाव से त्रिकाल है, शुद्ध सत्तारूप है, पर्याय में एकसमय का विकार है, वह स्वभाव में असत् है। ऐसे शुद्धस्वभाव को बतलाकर सन्त जगत से कहते हैं कि अरे जीवो! जिस पंथ पर हम जा रहे हैं, वह पंथ यही है।

श्री प्रवचनसार में आचार्यदेव कहते हैं—जो जीव दु:ख से मुक्त होने का अर्थी हो, वह विशुद्ध ज्ञान-दर्शन प्रधान श्रामण्य को अंगीकृत करो... उसे अंगीकृत करने का जो **यथानुभूत मार्ग, उसके प्रणेता हम यह खड़े हैं।** वैसे ही समयसार में आचार्यदेव कहते हैं कि—हे जीवो! छट्ठे-सातवें गुणस्थान में शुद्ध आत्मा के अनुभव की दशा कैसी होती है, वैसी दशा यदि तुम्हें प्रगट करना हो तो उसके प्रणेता हम यह प्रत्यक्ष हैं। हम अपने आत्मा में शुद्धात्मा के अनुभव की ऐसी दशा प्रगट करके जगत से कहते हैं कि— अहो! शुद्ध स्वभाव की दशा प्रगट करना हो तो उसका उपाय यही है। शुद्ध सत्तास्वरूप आत्मा की प्रतीति करो! उसका बहुमान करके उसमें नमन करो।

पहले से ही ऐसे स्वभाव का निर्णय करो।

बाह्य पदार्थों से तो आत्मा त्रिकाल भिन्न है और पुण्य-पापरूप जो एक समय का संसार वह भी मेरे स्वरूप में नहीं है, मैं एक चैतन्य सत्तास्वरूप शुद्ध वस्तु हूँ—इस प्रकार शुद्ध आत्मा को प्रतीति में लेना। भीतर अन्धकार दिखायी देता है, बाहर जड़ पदार्थ दिखायी देते हैं... परन्तु भाई! उन दोनों को देखनेवाला तू कौन है ? तू भीतर चैतन्य सत्तामय ज्ञाता है। अन्धकार को देखनेवाला स्वयं अन्धकाररूप नहीं है, अन्धकार को जाननेवाला स्वयं चैतन्य प्रकाशरूप है। अहो! ऐसी शुद्ध सत्तारूप चैतन्यवस्तु की अन्तर में प्रतीति करो। पर्यायबुद्धि छोड़कर शुद्ध वस्तु को प्रतीति में लो।

द्रव्य से शुद्ध सत्तारूप वस्तु है (भावाय)।
गुण से चित्स्वभाववान है (चित्स्वभावाय)।
और पर्याय से सर्वभावों का ज्ञाता है (सर्वभावान्तरच्छिदे)।

मैं त्रिकाल शुद्ध चैतन्य सत्तारूप वस्तु हूँ। मेरी पर्याय सत्तास्वभाव में से ही आती है, बाह्य से नहीं आती—ऐसा निर्णय करके स्वभाव में नमन किया, वह निर्मल पर्याय कहाँ से आयी ?—तो कहते हैं कि ज्ञानस्वभावी वस्तु में से ही परिणमित होते-होते वह दशा प्रगट हुई है। बाह्य में से या पुण्य-पाप में से प्रगट नहीं हुई है।

अफीम कड़वी और नींबू खट्टा, परन्तु आत्मा कैसा ?—कि आत्मा चित्स्वभावी वस्तु है। औषधि से रोग मिटता है और पानी से प्यास मिटती है, भोजन से भूख मिटती है और वस्त्रों से ठण्ड दूर होती है।—इस प्रकार इन सबके गुणों का तो विश्वास करता है, परन्तु आत्मा चैतन्यस्वभावी वस्तु है, वह सबका ज्ञाता है, उससे दुःख दूर होता है और सुख की प्राप्ति होती है—ऐसा विश्वास नहीं किया है। स्वभाव सामर्थ्य का विश्वास करके उसका आदर करना, उसमें झुकना-परिणमित होना, उसका नाम मंगलाचरण है। सर्व को जानूँ, ऐसा गुण मुझमें है—इस प्रकार अपने गुण का विश्वास करे तो संसार जल्दी मिट जाये और मोक्षमार्ग प्रगट हो।

अहो! जिस कुल में तीर्थंकरों ने जन्म लिया, वही कुल इस आत्मा का है। तीर्थंकरों में और आत्मा के स्वभाव में परमार्थतः कोई अन्तर नहीं है। धर्मी कहता है कि अहो! मैं अपने धर्ममूर्ति आत्मा की प्रतीति करके उसके गीत गाने को खड़ा हुआ, उसमें अब भंग नहीं पड़ेगा। अपने स्वभाव के अतिरिक्त अन्य किसी का आदर नहीं करूँगा, ऐसी हमारे कुल की रीति है। हे तीर्थंकरों! आप जिस कुल में हुए, उसी कुल का मैं हूँ। जिस मार्ग में तीर्थंकर विचरे, उसी पंथ पर हम विचरण करनेवाले हैं। हे नाथ! तुम्हारी और मेरी एक ही चैतन्य-जाति है। मैंने भी ऐसे शुद्ध चैतन्य को माना है और उसी का आदर करके मोक्षमार्ग में चला आ रहा हूँ। मेरे चैतन्यकुल की ऐसी रीति है। हे नाथ! परिपूर्ण चिदानन्दस्वभाव के अतिरिक्त अन्य किसी के आश्रय से अब लाभ नहीं मानूँगा। हम आत्मा हैं, हमारा चित्स्वभाव है, गुण-गुणी पृथक् नहीं हैं; दोनों त्रिकाल हैं, उसी में से ज्ञान की पर्याय प्रगट

होती है। ज्ञान बाहर से नहीं आता, परन्तु भीतर स्वभाव भरा है, उसी में से वह प्रगट होता है।

शुद्ध आत्मा अपनी स्वानुभूति से ही प्रकाशमान है। स्वयं अन्तर्मुख होकर अपना अनुभव किया, ऐसी निर्विकारी क्रिया से आत्मा प्रकाशित होता है। देखो, यह धर्म की क्रिया है। ऐसी क्रिया को जो नहीं मानता, उसे वस्तु ही सिद्ध नहीं होती। अहो! आत्मा स्वयं अपने से ही अपने को जानता है। शरीर, समवसरण और तीर्थंकरों की उपस्थिति के समय भी उन किसी के कारण से भगवान आत्मा प्रकाशमान नहीं होता; उस समय भी स्वयं अपने अन्तर में स्वानुभवरूपी क्रिया से ही प्रकाशमान होता है।

देखो, आज यह समयसार का दिवस होने से समयसार का मंगलाचरण किया। अन्तर में चैतन्य-स्वभावोन्मुख होकर निर्विकल्प अनुभव की जो क्रिया है, उसके द्वारा आत्मा प्रगट होता है। इसके अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार आत्मा प्रगट नहीं होता।

अन्तर स्वभाव की स्वानुभवरूपी क्रिया द्वारा ही आत्मा को धर्म होता है। सम्यक्श्रद्धा, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र, यह तीनों आत्मा की स्वानुभवरूपी क्रिया से ही प्रकाशमान होते हैं। यह सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानरूप स्वानुभूति की क्रिया नारकी भी कर सकते हैं। स्वर्ग के देव और तिर्यंच भी कर सकते हैं; आठ वर्ष के बालकों को भी ऐसी स्वानुभूति की क्रिया होती है। नरक में पड़े हुए, असंख्य नारकी जीव देह दृष्टि छोड़कर अंतर के चिदानन्द परमात्मा को दृष्टि में लेकर ऐसी स्वानुभूति की क्रिया करते हैं। सम्यग्दृष्टि मेंढ़क भी ऐसी क्रिया करता है। मैं मेढ़क नहीं हूँ, मैं नारकी नहीं हूँ, मैं तो शुद्ध चैतन्य परमात्मा हूँ—ऐसा दृष्टि में लेकर वे जीव शुद्ध स्वभाव की अनुभूति की क्रिया करते हैं। ऐसी क्रिया वह धर्म है; वह महामंगल है।

अरे जीव! तू एक बार ऐसे सत् का यथार्थ श्रवण तो कर, श्रवण करके

शेष पृष्ठ 20 पर.....

श्री समयसार नाटक पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
धारावाही प्रवचन

जीव की दशा पर अग्नि का दृष्टान्त

'दीसै उनमान सौ उदौतवान ठौर-ठौर'- जहाँ-जहाँ देखता हूँ, वहाँ-वहाँ आत्मा चैतन्य चमत्कार से जाननहार--जाननहार--जाननहार है। राग का जाननहार, आस्रव का जाननहार, बंध का जाननहार, संवर, निर्जरा और मोक्ष का भी जाननहार है। जाननहार सदा सबका जाननहार है। एक आत्माराम सिवाय अन्य कुछ नहीं है। अर्थात् ज्ञान-ज्ञान-ज्ञानस्वरूप है, उसमें कोई भेद नहीं है।

लोगों को यह अभ्यास नहीं है, अत: कठिन पड़ता है। कभी अपनी जाति को देखा नहीं और कैसे देखना, यह भी पता नहीं है।

एक चिद्रूप आत्माराम में शरीर, वाणी, मन, आबरू, पैसा आदि तो नहीं; परन्तु ये आस्रव, संवर आदि नवभेद भी उसमे नहीं। अहो! यह वीतराग मार्ग का मक्खन है।

आत्माराम--आत्माराम--आनन्द--आनन्द त्रिकाल अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड है, वह आत्मा है। अतीन्द्रिय ज्ञान का खजाना है। पर्याय तेरा व्यवहार है और द्रव्य तेरा निश्चय है। देखो! संवर, निर्जरा और मोक्ष भी व्यवहार है।

भावार्थ- जब आत्मा अशुभभाव में वर्तता है, तब पापतत्त्वरूप होता है। हिंसा, झूठ, चोरी आदि पापभाव हैं। दया, दान, सत्य, अचौर्य आदि पुण्यभाव हैं- इन दोनों प्रकार के राग से हटकर स्वभाव है वैसी ही वीतरागता पर्याय में प्रकट हो-उसका नाम समता है। समता प्रकट हो, तब आत्मा आवरण से मुक्त होता है अर्थात् कि संवर होता है।

पुण्य-पाप के विकल्प में वर्तता जीव आस्रवरूप होता है और पुण्य-पाप के राग में अटकता जीव भाव बंधरूप होता है। और जब यह शरीर मेरा, पैसे मेरे, मकान मेरा- ऐसे जड़ पदार्थों में अहंबुद्धि करता है, तब जड़स्वरूप होता है अर्थात् अपने को जड़ मानता है। अज्ञानी ऐसा मानता है कि यह पैसा है तो

खर्च कर सकते हैं। पैसे के बिना प्रीतिभोज हो सकता है? गरीब मनुष्य कर सकता है? ऐसा मानते हुए वह जड़ का स्वामी होता है। भाई! पैसा पैसे के कारण आता है और जाता है, उसमें आत्मा कुछ नहीं कर सकता। एक आँख की पलक को फेरना, वह भी आत्मा का कार्य नहीं है; फिर भी अज्ञानी पर के कार्य का कर्त्ता होता है, वह पर्याय में जड़बुद्धि हुआ है।

वास्तव में, शुद्ध और अशुद्ध समस्त दशाओं में आत्मा वस्तुरूप से निर्विकार है। सोना में भेद नहीं देखकर सोने को सोनेरूप देखो तो सोना एकरूप है; वैसे ही पर्याय के भेद को नहीं देखकर त्रिकाली वस्तु को देखे तो आत्मा आनन्दधाम है। जो दशा में भेदरूप वर्तता है, वही आत्मा वस्तुरूप से अभेद और निर्विकार है। पर्याय में भेद है, परन्तु वस्तु अभेद है।

अनुभव की दशा में सूर्य का दृष्टान्त

जैसैं रवि-मंडल के उदै महि-मंडलमैं,
आतप अटल तम पटल विलातु है।
तैसैं परमातमाकौ अनुभौ रहत जौलौं.
तौलौं कहूं दुविधा न कहूं पच्छपातु है ।।
नयकौ न लेस परवानकौ न परवेस,
निच्छेपके वंसकौ विधुंस होत जातु है।
जे जे वस्तु साधक हैं तेऊ तहां बाधक हैं,
बाकी राग दोष की दसा की कौन बातु है ।।10।।

अर्थ:- जिस प्रकार सूर्य के उदय में भूमंडल पर धूप फैल जाती है और अंधकार का लोप हो जाता है, उसी प्रकार जबतक शुद्ध आत्मा का अनुभव रहता है तबतक कोई विकल्प व नय आदि का पक्ष नहीं रहता। वहाँ नय-विचार का लेश नहीं है, प्रमाण की पहुँच नहीं है और निक्षेपों का समुदाय नष्ट हो जाता है। पूर्व की दशा में जो जो बातें सहायक थीं वे ही अनुभव की दशा में बाधक होती हैं और राग-द्वेष तो बाधक हैं ही।

भावार्थ:- नय तो वस्तु का गुण सिद्ध करता है और अनुभव सिद्ध वस्तु का होता है, इससे अनुभव में नय का काम नहीं है, प्रत्यक्ष-परोक्ष आदि

प्रमाण असिद्ध वस्तु को सिद्ध करते हैं सो अनुभव में वस्तु सिद्ध ही है अत: प्रमाण भी अनावश्यक है, निक्षेप से वस्तु की स्थिति समझ में आती है सो अनुभव में शुद्ध आत्म-पदार्थ का भान रहता है अत: निक्षेप भी निष्प्रयोजन है, इतना ही नहीं ये तीनों अनुभव की दशा में बाधाकारक हैं परन्तु इन्हें हानिकर समझकर प्रथम अवस्था में छोड़ने का उपदेश नहीं है, क्योंकि इनके बिना पदार्थ का ज्ञान नहीं हो सकता। ये नय आदि साधक हैं और अनुभव साध्य है, जैसे कि दंड चक्र आदि साधनों के बिना घट की सृष्टि नहीं होती। परन्तु जिस प्रकार घट पदार्थ सिद्ध हुए पीछे दंड चक्र आदि विडंबनारूप ही होते हैं, उसी प्रकार अनुभव प्राप्त होने के उपरान्त नय निक्षेप आदि के विकल्प हानिकारक हैं ।।10।।

काव्य- 10 पर प्रवचन

अब दशवें काव्य में सूर्य के दृष्टान्त से अनुभव की दशा का वर्णन करते हैं:-

जैसे सूर्य के उदय में भूमण्डल के ऊपर ताप फैल जाता है और अंधकार का लोप हो जाता है, वैसे ही "परमातम को अनुभौ रहत जौलौं, तौलों कहु दुविधा न कहूं पच्छपातु है" निर्विकल्प अनुभव में नय के पक्ष या विकल्प नहीं रहते। सम्यग्दर्शन और ज्ञान प्रकट होता है, अतीन्द्रिय आनन्द आता है। शुद्ध आत्मा के अखण्ड आनन्द के अनुभव में, मैं द्रव्य हूँ या पर्याय हूँ- ऐसे दो भेद भी नहीं रहते। परमात्मा का अनुभव माने नौ भेदस्वरूप आत्मा का अनुभव नहीं, परन्तु जैसा त्रिकाली आत्मा का स्वरूप है; वैसी अनुभवरूप पर्याय जिसमें सर्व विकल्प टूट जाते हैं।

चैतन्य साहेब जब अपने घर में प्रवेश करता है, निर्विकल्प अनुभव करता है; तब वहाँ कोई विकल्प या भेद आदि का प्रवेश नहीं है।

'अनुभव चिन्तामणि रतन, अनुभव है रसकूप।
अनुभव मारग मोक्ष को, अनुभव मोक्ष सरूप।।

अपने ध्रुवस्वरूप आत्मा के अनुभव में, मैं एक हूँ और पर्याय में अनेक

भेद हैं- ऐसे विकल्प नहीं होते; परन्तु आत्मा में एकाग्रता हो, उसका नाम अनुभव है, उसका नाम धर्म है। जिसको अभी धर्म के स्वरूप की समझ ही न हो, उसको ऐसा अनुभव कहाँ से होगा ?वह तो चौरासी के अवतार में फेरे कर-करके मर रहा है। लग्न मण्डप में तो चार या सात फेरे फिरते हैं; परन्तु कौआ, कुत्ता, कीड़ी, कछुआ, नरक, निगोद आदि में अनन्त फेरे फिर आया है; परन्तु अभी सब भूल गया है। इन अनन्त अवतारों के नाश का उपाय यह एक ही 'धर्म' है।

त्रिकाल जागृतस्वरूप ज्ञानानन्दस्वभावी आत्मा के सन्मुख होने पर अमृत आनन्द का स्वाद आता है। उसमें यह अनुभव है और मैं उसका अनुभव करता हूँ- ऐसा भेद नहीं है अथवा किसी नय या प्रमाण आदि का पक्षपात भी वहाँ नहीं है। अर्थात् मैं ज्ञान गुणवाला हूँ या द्रव्य-पर्यायस्वरूप वस्तु हूँ- ऐसा पक्ष अनुभव में नहीं होता।

अनुभव में नयविचार का लेश नहीं है और प्रमाण की पहुँच नहीं है। अर्थात् द्रव्य त्रिकाली है और पर्याय क्षणिक तथा भेदरूप है -ऐसा विकल्प अनुभव में नहीं होता।

अनुभव में निक्षेपों का समुदाय नष्ट हो जाता है। नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव- इन चार निक्षेपों से वस्तु पहचानी जाती है, ऐसी वस्तु को पहचानने की रीत भी अनुभव में नहीं होती।

वस्तु का स्वरूप सिद्ध करने के लिए नय, प्रमाण आदि साधन होते हैं, परन्तु अनुभव करने में उनके विकल्प बाधक हैं। नय का और प्रमाण का विकल्पात्मक ज्ञान अनुभव करने में विघ्न करनेवाला है। नय माने, ज्ञान का एक अंश। वस्तु अनन्त गुणात्मक है, उसका एक-एक गुण, नय से सिद्ध होता है। वस्तु का ऐसा स्वरूप प्रमाण से सिद्ध होता है। वस्तु का नाम, द्रव्य, भाव आदि का निक्षेप से वस्तु सिद्ध होती है; परन्तु वस्तु के अनुभव के काल में नय, निक्षेप या प्रमाण नहीं होते। जो वस्तु को सिद्ध करने के लिए साधक हैं, वे ही वस्तु के अनुभव काल में बाधक हैं।

जैसे बाजार में से वस्तु लेने जाए तब वस्तु का भाव पूछते हैं। बाँट सच्चे हैं या नहीं- बराबर तौलते हैं या नहीं, वह देखते हैं; परन्तु घर लाकर उस माल को खाने बैठे, तब वह कुछ याद नहीं करते। वैसे ही अपनी वस्तु-स्थिति की मर्यादा जानने के लिए उसका त्रिकाली स्वभाव और क्षणिक पर्याय का ज्ञान में निर्णय करते हैं, परन्तु अनुभव के काल में द्रव्य या पर्याय का विचार नहीं होता- ऐसा मार्ग है बापू! पहले इसे श्रद्धा-ज्ञान में तो समझना पड़ेगा कि मार्ग इसप्रकार है।

'बाकी राग दोष की दसा की कौन बातु है' -जहाँ जीव राग के परदे तोड़कर निर्विकल्प अनुभव में जाता है, वहाँ राग-द्वेष कहाँ से हो? जहाँ भेद नहीं, विकल्प नहीं; वहाँ अन्य राग-द्वेष की तो बात ही नहीं होती न। कंदमूल नहीं खाना, रात्रिभोजन नहीं करना, सामायिक करनी, प्रतिक्रमण करना, अष्टमी, चतुर्दशी को हरितकाय नहीं खाना- यह सब उसकी भूमिका में होते हैं। यह शुभराग है, धर्म नहीं। वस्तु का निर्विकल्प अनुभव, वह धर्म है, उसमें नय निक्षेप और प्रमाण के विकल्प भी बाधक हैं कि जो प्रथम भूमिका में वस्तु की सिद्धि करने के लिए साधक हैं, परन्तु उन्हें ही लाभरूप और निज मान ले तो मिथ्यात्व है। कषाय की मन्दता से उत्पन्न विकल्प भी अनुभव में बाधक हैं।

अरे! मनुष्य भव मिला- भवभ्रमण में से निकलने का अवसर आया, तब सत्य जैसा है, वैसा समझ ले। भाई! भगवान आत्मा-चिन्तामणिरत्न प्रभु सहजानन्द का सागर उछला, कल्पवृक्ष के फल फले; वहाँ कहते हैं कि नय निक्षेप के विकल्पों की भी कोई आवश्यकता नहीं है।

तीर्थंकर परमदेव सर्वज्ञ परमात्मा ऐसा कहते हैं कि पहले आत्मा का स्वरूप नय, निक्षेप, प्रमाण से जान ले; परन्तु अनुभव के काल में तो ये नयादि के विकल्प नहीं, आत्मा अपनी साधना में चढ़ता है, तब क्या-क्या होता है? उसकी बात चल रही है।

अनादि का जो पुण्य-पाप और राग-द्वेष का अनुभव है, वह मिथ्यात्व है। त्रिकाल अभेद शुद्ध चैतन्य वस्तु का ज्ञान करे, उस ज्ञान को निश्चयनय

कहते हैं और जो वर्तमान अवस्था को लक्ष्य में ले, उस ज्ञान को व्यवहारनय कहते हैं –इन दोनों विकल्पों की बात है। अनुभव में तो इन दोनों नयों का लेश भी प्रवेश नहीं है। भगवान आत्मा तो निर्विकल्प वीतरागमूर्ति है। चौथे गुणस्थान में हो, पाँचवें में हो या सातवें में हो; परन्तु उस अनुभव के काल में विकल्प का अभाव होता है।

प्रथम सम्यग्दर्शन शुद्धोपयोग के काल में ही होता है। पुण्य-पाप के विकल्प के काल में अनुभव नहीं होता। अखण्ड अभेद वस्तु, वह निश्चय और एक समय की पर्याय, वह व्यवहार- इन दोनों को विषय करनेवाले प्रमाण ज्ञान की पहुँच भी अनुभव में नहीं है।

नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव इन चारों ही निक्षेपों का अनुभव में नाश हो जाता है। "जै जै वस्तु साधक है, तेऊ वहाँ बाधक है' अनुभव के पहले जो प्रमाण-नय और निक्षेप वस्तु को सिद्ध करने में साधक थे, वे ही अनुभव में बाधक होते हैं; तो फिर अन्य राग-द्वेष की कथा का तो क्या कहना ?दया पालूँ या सत्य बोलूँ- आदि विकल्प तो अनुभव में होते ही नहीं।

यह बात बहुत ऊँची लगती है, परन्तु ऊँची है नहीं। वस्तु के अनुभव काल की स्थिति की बात है। धर्मी को अनुभव काल में आनन्द का स्वाद होता है। भले ही (धर्मी) चौथे गुणस्थान में हो या पाँचवें गुणस्थान में हो या सप्तम गुणस्थानवर्ती मुनि हो, परन्तु वे अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद से स्वरूप में डूबते होते हैं।

परमात्मा के पेट में अनन्त शक्तियाँ पड़ी हैं। वे परमात्मा कौन से ?अरिहन्त और सिद्ध ?नहीं नहीं। जो पुण्य-पाप को निज मानता है; वह बहिरात्मा है। जो शुद्ध स्वरूप का अनुभव करे, वह अन्तरात्मा है। ये अन्तरात्मा अपने पूर्ण स्वरूप का अनुभव करें, तब उन्हें परमात्मा कहते हैं।

भगवान ने तेरे आत्मा का यह स्वरूप कहा है। ऐसा भाव पहिले होता है, उसे व्यवहार से साधक कहा है परन्तु वही भाव अनुभव में बाधक है, और राग-द्वेष तो बाधक है ही।

भावार्थ-नय तो वस्तु के गुण को सिद्ध करता है अर्थात् त्रिकाली द्रव्य, वह निश्चय है और वर्तमान अवस्था, वह व्यवहार है ऐसे दोनों अंशों को प्रमाण सिद्ध करता हैं। वस्तु के एक-एक अंश अर्थात् धर्म को नय सिद्ध करता है और अनुभव, सिद्ध हुई वस्तु का होता है। उसमें सिद्ध करने को कुछ नहीं रहता।

आत्मा को राग अथवा विकल्प सहित मानना तो मिथ्यात्व है; वही चार गति में परिभ्रमण का बीज़ है। पुरुषार्थसिद्धिउपाय गाथा 14 में कहा है न! आत्मा राग, कर्म और शरीर से सहित नहीं होने पर भी सहित मानना, वही संसार में परिभ्रमण का बीज है।

भगवान आत्मा तो जिनस्वरूप है, वीतरागमूर्ति है। परमार्थ से आत्मा में और जिनस्वरूप में भेद नहीं है। ऐसे अनुभव तक पहुँचनेवालों की कितनी योग्यता और पात्रता हो! इस अनुभव के बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता और सम्यग्दर्शन के बिना धर्म नहीं होता।

वस्तुरूप से आत्मा त्रिकाली आनन्दकन्द है, उसे जाननेवाले ज्ञान का अंश, वह निश्चय है। वह निश्चयनय ध्रुव को सिद्ध करता है और वर्तमान पर्याय को व्यवहारनय सिद्ध करता है। इन नयों से सिद्ध हुई वस्तु का ही अनुभव होता है, अत: अनुभव के काल में कुछ साबित करना नहीं रहता। जैसे माल लेने जाते हैं तब उसका भाव पूछते हैं; सही तोलता है या नहीं यह देखते हैं आदि सब करते हैं, परन्तु उस माल को खाते समय भाव आदि का कुछ विचार नहीं करते; यह सब भूल जायें, तभी वस्तु का अनुभव होता है। वैसे ही बांट एवं भाव आदि की तरह यहाँ नय, निक्षेप और प्रमाण से पहले वस्तु स्वरूप निश्चित करते हैं कि त्रिकाली द्रव्य कैसा है, उसकी अवस्था कैसी है, सम्पूर्ण वस्तु कैसी है, उसके कितने अंश है? आदि.. आदि; परन्तु अनुभव के काल में वैसा कोई विकल्प नहीं रहता और ऐसा विचार करे तो अनुभव नहीं होता- इसकारण (विचार को) अनुभव काल में बाधक कहा है।

प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रमाण तो नहीं सिद्ध हुई वस्तु को सिद्ध करते हैं;

परन्तु अनुभव करे, तब प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रमाण नहीं होता। अनुभव में वस्तु सिद्ध ही है, अतः वहाँ प्रमाण भी अनावश्यक है।

निक्षेप से वस्तु की स्थिति समझने में आती है कि यह वस्तु है, यह वस्तु का भाव है, यह शक्ति है और यह प्रकट अवस्था है; परन्तु अनुभव में तो प्रगट वस्तु का ही अनुभव है इसलिए वहाँ यह द्रव्य है, यह भाव है– ऐसे विकल्प की भी आवश्यकता नहीं रहती; अतः निक्षेप भी अनुभव में निष्प्रयोजन है। इतना ही नहीं ये नय, प्रमाण और निक्षेप अनुभव की दशा में बाधा करते हैं, विघ्न करते हैं; परन्तु प्रथम अवस्था में उन्हें हानिकारक समझकर छोड़ने का उपदेश नहीं है; क्योंकि उनके बिना पदार्थ का ज्ञान नहीं हो सकता।

वस्तु कैसी है, उसमें कितनी शक्ति है, कितनी पर्याय है, इत्यादि भाव को सिद्ध करने के लिए नय, प्रमाणादि की आवश्यकता है; क्योंकि वे वस्तु को सिद्ध करते हैं। उनके द्वारा सर्वज्ञ कथित आत्मा और अज्ञानी कथित आत्मा के स्वरूप की भिन्नता जानी जा सकती है।

जैसे दंड, चक्र आदि साधनों बिना घट की उत्पत्ति नहीं होती। जैसे घट पदार्थ सिद्ध होने के पश्चात् दंड, चक्र आदि विडम्बनारूप ही होते हैं, उसीप्रकार अनुभव होने के पश्चात् नय, निक्षेप आदि का विकल्प हानिकारक है। दंड, चक्र बिना घड़ा नहीं होता– इसका अर्थ इतना कि घड़ा हो तब दंड, चक्र आदि होते हैं; परन्तु उनसे घड़ा होता है– ऐसा नहीं। निमित्त कार्यकाल में उपस्थित होता है; परन्तु उस निमित्त से कार्य या कार्यकाल नहीं होता। जिस वस्तु की जो अवस्था जिस काल में होती है, वह उसका कार्यकाल है, उस काल में निमित्त होता है; परन्तु निमित्त आया इसलिए कार्य हुआ– ऐसा मानो तब तो वह निमित्त ही उपादान बन गया।

इस मनुष्य देह का एक-एक क्षण चक्रवर्ती की सम्पदा की अपेक्षा भी अधिक मूल्यवान है, इसका एक समय भी व्यर्थ नहीं गँवाना चाहिए। आत्मा के कार्य के लिए समय का सदुपयोग करना चाहिए। यह काल अपनी जात (स्वरूप) का निर्णय और अनुभव करने के लिए है। आँख बंद होने के पूर्व

यह कार्य कर लेने जैसा है।

यहाँ कहते हैं कि चक्रादि साधनों बिना घट की उत्पत्ति नहीं होती– यह नास्ति से कथन है। अस्ति का कथन और स्वरूप यह है कि घड़ा होने के काल में कुम्हार और चक्रादि साधनों का निमित्त होता है। घड़ा होने के पश्चात् वह विडंबनारूप है अर्थात् इन साधनों में निमित्तपना भी नहीं रहता। वैसे ही अनुभव हो जाने के बाद नय, निक्षेप, प्रमाण के विकल्पों की आवश्यकता नहीं रहती।

बनिया बही-खाते सँभालते हैं न! उसीप्रकार यहाँ भगवान के बही-खाते सँभालने की बात है। **क्रमशः**

..... पृष्ठ 11 का शेष

निर्णय तो कर कि अन्तर में कैसी वस्तु है ? अन्तर में शुद्ध वस्तु है, उसी के आश्रय से धर्म होता है। प्रथम ऐसी रुचि करे तो वीर्य उसका अनुसरण करके अन्तरोन्मुख हो, अन्तर्मुख स्वभाव से ही लाभ है—ऐसी रुचि करे तो वीर्य की गति अन्तरोन्मुख हुए बिना न रहे।

चैतन्यमूर्ति आत्मा का स्वभाव कैसा है ? भले ही वर्तमान पर्याय में अल्प जानने की शक्ति हो, परन्तु उसका स्वभाव सब भावों को जानने का है। ज्ञान में एकाग्रता की क्रिया करते-करते सर्वज्ञ हो, ऐसी उसकी शक्ति है। आत्मा में सर्वज्ञ होने की शक्ति को जो स्वीकार न करे, वह महान नास्तिक है। उससे कहते हैं कि—अरे आत्मा! अन्तरस्वभाव में एकाग्रता की क्रिया द्वारा संसार को मिटाकर सर्वज्ञ होने की शक्ति तुझमें विद्यमान है। अनन्त आत्माओं ने अन्तर की स्वानुभूतिरूप क्रिया द्वारा सर्वज्ञ परमात्मदशा प्रगट की है। जो अन्तर के चैतन्यस्वभाव में दृष्टि डालकर एकाग्र हो, वह सर्वज्ञ परमात्मा हुए बिना नहीं रहेगा। इस प्रकार इष्टदेव को तथा अपने शुद्ध आत्मा को पहिचानकर उन्हें नमस्कार किया, वह अपूर्व मंगलाचरण है।

आत्मधर्म (हिन्दी), वर्ष-22, अंक-1

गतांक से आगे....

आत्मा कौन है और किसप्रकार प्राप्त हो ?

(श्री प्रवचनसार के परिशिष्ट में 47 नयों द्वारा आत्मद्रव्य का वर्णन किया है, उस पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजी स्वामी के विशिष्ट अपूर्व प्रवचनों का सार)

शिष्य के प्रश्न में दो बातें रखी हैं, एक तो आत्मा कैसा है ? और दूसरा, वह किसप्रकार प्राप्त हो ? आत्मा कैसा है, उसका ज्ञान करूँ और उसकी प्राप्ति की क्रिया करूँ – इसप्रकार शिष्य के प्रश्न में सम्यग्ज्ञान और चारित्र दोनों की बात आ जाती है। शिष्य पात्र होकर पूछता है कि हे नाथ ! मेरा आत्मा कौन है, उसे जाने बिना मैं अनादि से संसार में परिभ्रमण कर रहा हूँ, इसलिए 'आत्मा का स्वरूप क्या है' और उसकी प्राप्ति किसप्रकार हो ? वह मुझे समझाइये कि जिसे समझकर मैं आत्मा की प्राप्ति करके परमात्मा हो जाऊँ और मुझे अवतार न रहे।'

देखो ! शिष्य कोई उलटे-सीधे प्रश्न नहीं करता, किन्तु 'यह मेरा आत्मा कैसा है' – ऐसा ही पूछता है। जिसप्रकार बाजार में जाये, वहाँ जो वस्तु लेना हो, उसका भाव पूछता है। जिसे बहुमूल्य हीरे खरीदना हों, वह कहीं शाक-भाजी वाले की दुकान पर भाव पूछने नहीं जाता, उसीप्रकार जिस शिष्य को आत्मा की दरकार हुई है, वह पूछता है कि हे प्रभो ! आत्मा कैसा है और उसकी प्राप्ति कैसे हो ? वह समझाइये।

– ऐसा पूछनेवाले जिज्ञासु शिष्य को आचार्यदेव पुनः विशेषरूप से इस परिशिष्ट द्वारा समझाते हैं, पहले वह कथन आ तो गया है, किन्तु जिज्ञासु के लिए अभी पुनः कहा जाता है। हम निरर्थक बकवाद नहीं करते, और किसी के घर जाकर बलात् उपदेश नहीं देते, किन्तु विनय से समझने के लिए जो जिज्ञासु पूछता है, उससे कहा जाता है, यह बात 'प्रश्न किया जाये तो' ऐसा कहकर आचार्यदेव ने बतला दी है। प्रश्न की भाषा तो जड़ है, किन्तु उसका वाच्यभाव ऐसा है कि शिष्य को अंतर में उसप्रकार की-आत्मा को समझने की भावना जागृत हुई है। ऐसे पात्र शिष्य को समझाने के

लिए हम पुनः आत्मा का वर्णन करते हैं। देखो, आचार्य प्रभु की करुणा और शिष्य की पात्रता।

आत्मा कैसा है, उसे जानकर मुझे अपना कल्याण करना है – ऐसी जिसे भावना हुई हो, उसी को ऐसा प्रश्न उठता है और उसी को आचार्यदेव समझाते हैं। जो जीव समझकर स्थिर हो गया हो, उसे तो ऐसे प्रश्न का विकल्प नहीं उठता और जिसे समझाने की दरकार ही नहीं है, उसे भी ऐसी जिज्ञासा का प्रश्न नहीं उठता और न उसके लिए यह कहा जाता है। किन्तु जिसे अंतर में जिज्ञासा जागृत हुई है और विनय से पूछता है, ऐसे शिष्य के लिए आचार्यदेव पुनः 'आत्मा कैसा है' वह कहते हैं –

अनंत नयात्मक श्रुतप्रमाण से प्रमेय होनेवाला आत्मा

'प्रथम तो, आत्मा वास्तव में चैतन्य सामान्य द्वारा व्याप्त अनंत धर्मों को अधिष्ठाता (स्वामी) एक द्रव्य है, क्योंकि अनंत धर्मों में व्याप्त जो अनंतनय हैं, उनमें व्याप्त जो एक श्रुतज्ञान स्वरूप प्रमाण है, उस प्रमाणपूर्वक स्वानुभव द्वारा (वह आत्मद्रव्य) प्रमेय होता है–ज्ञात होता है।'

यह भगवान आत्मा एक द्रव्य है और उसमें अनंत धर्म हैं। प्रत्येक आत्मा अनंत धर्मों का अधिष्ठाता अर्थात् स्वामी है। अनंत धर्म चैतन्य सामान्य द्वारा व्याप्त हैं, उन अनंत धर्मों के रहने का स्थान आत्मा है। धर्म अनंत होने पर भी उन्हें धारण करनेवाला एक ही द्रव्य है। जगत में सर्व मिलकर एक ही आत्मा है, ऐसा नहीं है। जगत में भिन्न-भिन्न अनंत आत्मा हैं और वह प्रत्येक आत्मा अनंत धर्मवाला है। प्रत्येक अनंत धर्मों के आधाररूप एक द्रव्य है, क्योंकि अनंत धर्मों को जाननेवाले को अनंतनय हैं, उनमें व्याप्त एक श्रुतज्ञान प्रमाणपूर्वक स्वानुभव से आत्मा ज्ञात होता है।

एक आत्मपदार्थ में अनंत धर्म हैं और उसे जाननेवाले श्रुतप्रमाण में अनंतनय हैं। एक-एक धर्म को जाननेवाला एक-एक नय, इस प्रकार अनंत धर्मों को जाननेवाले अनंत नय हैं, जिसप्रकार अनंत धर्म एक आत्मद्रव्य में समा जाते हैं, उसीप्रकार अनंत नय एक श्रुतज्ञान में समा जाते

हैं। जिसप्रकार अपने अनंत धर्मों में एक द्रव्य व्याप्त है, उसीप्रकार उन धर्मों को जाननेवाले अनंत नयों में एक श्रुतज्ञान प्रमाण व्याप्त है। कोई कहे कि 'छद्मस्थ को अपने आत्मा की खबर नहीं पड़ती' तो यह बात मिथ्या है। यहाँ तो कहा है कि अनंत धर्मों वाला पूर्ण आत्मा ज्ञात हो जाता है, स्वसन्मुख ढलनेवाले श्रुतज्ञान से पूर्ण आत्मा स्वानुभव में आ जाता है।

आत्मा कैसा है ? और वह किसप्रकार ज्ञात हो ? यह दोनों बातें इसमें आ जाती हैं।

आत्मा कैसा है ? आत्मा वास्तव में चैतन्य सामान्य से व्याप्त अनंत धर्मोंवाला एक द्रव्य है।

वह आत्मा किसप्रकार ज्ञात होता है ? तो कहा कि आत्मा के अनंत धर्मों को जाननेवाले जो अनंतनय हैं, उनमें व्याप्त श्रुतज्ञान प्रमाण द्वारा स्वानुभव से आत्मद्रव्य ज्ञात होता है।

यहाँ अनंत धर्मात्मक अपना आत्मा प्रमेय है और अनंत नयात्मक श्रुतज्ञान, सो प्रमाण है, ऐसे प्रमाण द्वारा स्वानुभव से अपना आत्मा प्रमेय होता है-ज्ञात होता है। पर निमित्त से या राग के विकल्प से ऐसा आत्मा प्रमेय नहीं होता, किन्तु साधक को स्वसन्मुख ढलते हुए श्रुतज्ञान से ही ऐसा आत्मा प्रमेय होता है। अनंत धर्मवाले आत्मा को जैसा वह है, वैसा न माने तो उसका निर्विकल्प स्वसंवेदन नहीं होगा। ऐसे आत्मा को स्वानुभव से यथावत् जानना, सो धर्म है।

यहाँ आत्मा को अनंत धर्मोंवाला कहा है, तो धर्म का अर्थ क्या ? धर्म का अर्थ है वस्तु का स्वभाव। प्रत्येक वस्तु में अपने-अपने अनंत स्वभाव विद्यमान हैं, उसे यहाँ धर्म कहते हैं। जड़-पुद्गल में भी उसके अनंत धर्म विद्यमान हैं, किन्तु यहाँ तो शिष्य ने 'आत्मा कैसा है' ऐसा प्रश्न किया है, इसलिए आत्मा के धर्म की बात है। आत्मा में ज्ञान, दर्शन, अस्ति, नास्ति, नित्य, अनित्य, पुरुषार्थ, नियत आदि अनंत स्वभाव विद्यमान हैं, वे सब उसके धर्म हैं, अपने उन धर्मों से धर्मी ऐसा आत्मा पहिचाना जाता है। यहाँ

धर्म अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप जो मोक्षमार्ग है, उसका वर्णन नहीं है, किन्तु वस्तु अनंत धर्मस्वरूप, उसका यह वर्णन है। ऐसे अनंत धर्मोंवाले आत्मा को जानकर उसकी रुचि और उसमें एकाग्रता करने से जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट होता है, वह मोक्षमार्गरूप धर्म है।

वस्तु में जो अनंतधर्म स्वयंसिद्ध हैं, वे ही ज्ञान में ज्ञात होते हैं। वस्तु के अनंत धर्मों को कहीं नवीन नहीं बनाना पड़ता, वस्तु तो स्वभाव से ही वैसी है, किन्तु जब उस वस्तु का ज्ञान हुआ, तब सम्यग्ज्ञान नवीन प्रगट होता है और वस्तु में अनंत धर्म कहीं एक के पश्चात् एक नहीं हैं, किन्तु समस्त धर्म एक साथ ही हैं और वे अनंत धर्म एक साथ ज्ञान में आ जाते हैं, अनंत धर्मों को जानने के लिए अनंतकाल नहीं लगता। जहाँ श्रुतज्ञान को स्वसन्मुख करके भीतर स्वभाव में एकाग्र किया, वहाँ अनंत धर्मों का चैतन्यपिण्ड स्वसंवेदन में आ जाता है। एक-एक धर्म को पृथक् करके अनंतधर्म छद्मस्थ को भले ज्ञात न हों, किन्तु जहाँ अंतर स्वभावोन्मुख हुआ, वहाँ अनंत गुणों का पिण्ड भगवान आत्मा श्रुतज्ञान के स्वसंवेदन में आ जाता है। अनंत धर्मोंवाले आत्मा का अनुभव करने के लिए अनंतधर्म के भेद करके भिन्न-भिन्न विकल्प नहीं करना पड़ते क्योंकि अनंत धर्मों को धारण करनेवाला धर्मी एक है। जिसप्रकार आत्मा अनंत धर्मों का स्वामी एक है। उसीप्रकार उसे जाननेवाला श्रुतज्ञान भी अनंत नयों का स्वामी एक ही है। इसलिए एक धर्म को पृथक् करके भेद के विकल्प द्वारा पूर्ण आत्मा प्रमेय नहीं होता और पूर्ण आत्मा को प्रमेय किये बिना ज्ञान प्रमाण नहीं होता। ज्ञान में अनंत नय हैं और पदार्थ में अनंत प्रकार के धर्म हैं, ज्ञान अनंत नयोंवाला होने पर भी प्रमाणरूप से वह एक है, उसीप्रकार पदार्थ अनंत धर्मोंवाला होने पर भी वस्तुरूप से वह एक है, ऐसे प्रमाण और प्रमेय की एकता होने से अर्थात् श्रुतज्ञान प्रमाण स्वसन्मुख होकर अभेद आत्मा में ढलने से आत्मा का अनुभव होता है, आत्मा ज्ञात होता है।

आत्मा स्वयं वास्तव में अनंत धर्मों का स्वामी है। अनंत गुण-धर्म,

पर्यायें या अपेक्षित धर्म – उन सबका पिण्ड आत्मा है, उन सभी धर्मों को आत्मा वास्तव में धारण करता है। आत्मा के किसी धर्म में पर की अपेक्षा भले आती हो किन्तु उसके कोई भी गुण-पर्याय अथवा धर्म पर के कारण नहीं है। नित्य-अनित्यपना या गति-स्थिति आदि धर्म उसके अपने हैं, उन धर्मों को भी आत्मा ही धारण कर रखता है, कहीं काल आदि निमित्तों के कारण वे धर्म नहीं हैं। अशुद्धता में कर्म निमित्त है, इसलिए वह अशुद्धता कर्म के कारण होती है – ऐसा नहीं है, अशुद्धता भी अपनी ही पर्याय का धर्म है। आत्मा का एक भी धर्म पर के आधार से नहीं है। शुद्धता या अशुद्धतारूप होनेवाला वह स्वयं ही है। कर्म के कारण अशुद्धता होती है – ऐसा नहीं है, अशुद्धता होने की योग्यतारूप धर्म भी अपना है, काल के कारण आत्मा परिणमित हो – ऐसा नहीं है, परिणमित होने का धर्म अपना है। धर्मास्तिकाय के कारण आत्मा गति करे – ऐसा नहीं है। गति करनेरूप धर्म अपना है, उसीप्रकार अधर्मास्तिकाय के कारण आत्मा स्थिति को प्राप्त होता है, ऐसा नहीं है, स्थिर रहनेरूप धर्म भी उसका अपना ही है, इसप्रकार अपने समस्त धर्मों का स्वामी आत्मा स्वयं ही है। काल आदि अन्य निमित्त जगत में भले हों, किन्तु आत्मा के धर्म कहीं निमित्त के आधार से नहीं हैं, धर्म तो आत्मद्रव्य के ही आधार से हैं। सिद्ध भगवान के प्रतिसमय परिणमन होता है, उनका वह परिणमन धर्म कहीं कालद्रव्य के आधीन नहीं है, किन्तु परिणमन होने का उस आत्मा का अनादि-अनंत धर्म है। इसप्रकार प्रत्येक आत्मा स्वयं अपने अनंत धर्मों का स्वामी है।

आत्मद्रव्य में अनंत धर्म हैं और उन अनंत धर्मों को जाननेवाले अनंतनय हैं, उन अनंत नयों में व्याप्त एक श्रुतज्ञान प्रमाणपूर्वक स्वानुभव से आत्मा ज्ञाता होता है। सम्पूर्ण श्रुतज्ञान, वह प्रमाण है और उसका एक पक्ष, वह नय है। प्रमाण सम्पूर्ण वस्तु को जानता है और नय एक-एक धर्म को जानता है। यहाँ तो, जो नय जिस धर्म में व्याप्त हो जाता है – ऐसा कहकर आचार्यदेव नय को और नय के विषय को अभेद बतलाते हैं। जिस धर्म के

सन्मुख होकर उसे जो नय जानता है, उस धर्म के साथ वह नय अभेद हो जाता है, इसलिए अपने में नय और नय का विषय एक हो जाता है।

इस प्रवचनसार के तीन अधिकारों में वस्तुस्वरूप का बहुत-सा वर्णन करने के पश्चात् अब तो यह अन्तिम परिशिष्ट है, इसमें आचार्यदेव ने बहुत स्पष्टता की है। शास्त्र में भले ही निमित्त से ऐसा कथन किया हो कि कर्म के कारण विकार होता है, धर्मास्तिकाय के कारण जीव-पुद्गल गति करते हैं, काल के कारण वस्तु होती है - ऐसे चाहे जितने कथन निमित्त से किये हों, किन्तु ऐसा समझना चाहिए कि उस-उसप्रकार का धर्म वस्तु का अपना ही है, निमित्त के कारण उसका धर्म नहीं है। किसी वस्तु का कोई भी धर्म अन्य वस्तु के कारण नहीं होता, प्रत्येक वस्तु स्वयं अपने अनंत धर्मोंवाली है। प्रत्येक आत्मा स्वयं अपने अनंत धर्मों का स्वामी है।

अहा! आचार्यदेव ने संक्षिप्त कथन में बहुत सार भर दिया है। आचार्यदेव कहते हैं कि यहाँ थोड़े से धर्मों का वर्णन किया है, वह थोड़ा लिखा बहुत जानना। 'थोड़ा लिखा बहुत जानना' - ऐसा कब कहा जाता है ? यदि कुछ लिखा ही न हो तो ऐसा नहीं कहा जा सकता, थोड़ा-सा मुख्य विषय लिखा हो तो फिर 'थोड़ा लिखा बहुत जानना' - ऐसा कहा जाता है। उसीप्रकार यहाँ आत्मा के अनंत धर्म हैं, उनमें से कुछ मुख्य धर्मों का वर्णन आचार्यदेव ने किया है, उन प्रयोजनभूत धर्मों को जानकर पश्चात् ऐसे दूसरे अनंत धर्म सर्वज्ञदेव ने जाने उसप्रकार से हैं' - ऐसी प्रतीति करे तो वह ठीक है, परन्तु आत्मा क्या है और उसके धर्म क्या हैं - वह कुछ नहीं जाने, प्रयोजनभूत वस्तु का निर्णय न करे और भगवान ने कहा वह सच्चा - ऐसा मात्र ओधिकरूप से मान ले तो उससे अपने को कुछ लाभ नहीं हो सकता।

यहाँ 'वास्तव में' शब्द का उपयोग करके आचार्यदेव कहते हैं कि वस्तु में अनंत धर्म कहीं कल्पना से नहीं कहते किन्तु वास्तव में वस्तु में ही वे अनंत धर्म हैं। वस्तु में वाच्य रूप जो धर्म है, उन्हीं का यह कथन है और वही ज्ञान में ज्ञात होते हैं। यदि वस्तु में ऐसा वाच्य न हो तो उसका कथन भी

न हो और उसे जाननेवाला ज्ञान भी न हो। इसलिए वस्तु में अनंत धर्म, उन धर्मों को जाननेवाला ज्ञान और उसका कथन – यह तीनों सत् हैं, यथार्थ हैं।

वस्तु जैसी हो, वैसी परिपूर्ण जिस ज्ञान में ज्ञात हो, उस ज्ञान को प्रमाण कहते हैं। प्रमाण अर्थात् वस्तु का माप करनेवाला ज्ञान। 'प्र' अर्थात् विशेष रूप से और 'माण' अर्थात् माप। जिसप्रकार मण अनाज आदि वस्तुओं का माप करनेवाला है, यहाँ भी उस माप को जानने वाला तो ज्ञान ही है, उसीप्रकार आत्मा को अनंत धर्मों को जाननेवाला-आत्मा का माप करनेवाला भी ज्ञान है। अनंत धर्मों का कथन करनेवाली वाणी निमित्त है, किन्तु उस वाणी को आत्मा के धर्मों की खबर नहीं है, वाणी और धर्म – दोनों को जाननेवाला तो ज्ञान है, वह ज्ञान ही प्रमाण है।

देखो भाई ! अनंत धर्मों वाला अपना आत्मा है, उसकी यह बात है। यह बात समझने जैसी है। जिसप्रकार रुपयों का ढेर पड़ा हो, उसे गिनने की कैसी उमंग उठती है। तो यहाँ तेरे आत्मा में एक समय में अनंत धर्मों का ढेर पड़ा है, अंतर्मुख होकर उसका माप करने की तुझे उमंग उठती है ? यदि उसका माप करना हो तो वह तेरे श्रुतज्ञान प्रमाण से ही होता है, किसी पर निमित्त से या राग से उसका माप नहीं होता, किन्तु ज्ञान को अंतरोन्मुख करे तो उस ज्ञान से ही आत्मा का माप होता है। अंनत धर्मों की संपत्ति प्रत्येक आत्मा में सदैव भरी पड़ी है, किन्तु अंतर्मुख होकर उसे जानने की अज्ञानी ने कभी दरकार नहीं की। आत्मा के अनंत धर्मों में किंचित् मात्र न्यूनता मानेगा तो नहीं चल सकता और न उस संपत्ति को माप करने में किसी पर की सहायता काम आयेगी। जिसप्रकार घर की संपत्ति पेटी में रखना हो तो बाहर के मजूरों से वह काम नहीं करवाता, किन्तु घर का मुख्य आदमी ही वह कार्य करता है, उसीप्रकार आत्मा के स्वभावगृह की जो अपार संपत्ति है, उसका माप किसी बाह्य साधन से नहीं होता, किन्तु स्वयं अपने श्रुतज्ञान प्रमाण को अंतरोन्मुख करे, तभी उसका यथार्थ माप और स्वानुभव होता है। अपने अनंत धर्मों को जाननेवाला ज्ञान अपने पास ही है, उस ज्ञान को

अंतरस्वभावोन्मुख करें, तभी आत्मा ज्ञात होता है, उसमें अन्य किसी का ज्ञान अपने काम में नहीं आता। 'गुरु का ज्ञान तो हमारे आत्मा को जानता है न ?' ऐसा कोई कहे तो उसका स्पष्टीकरण – गुरु का ज्ञान दूसरों के आत्मा को भी जानता है, यह बात ठीक है, किन्तु वह गुरु का ज्ञान तो गुरु के पास रहा, उससे दूसरों को क्या लाभ ? गुरु का ज्ञान उनके अपने आत्मा को ही स्वद्रव्यरूप से जानता है, यह आत्मा उनके ज्ञान में परद्रव्यरूप से ज्ञात होता है, वे कहीं इस आत्मा के धर्मों को स्वामीरूप से नहीं जानते, उनके अपने आत्मा के धर्मों को ही वे स्वामीरूप से जानते हैं। उनकी भांति यह आत्मा भी यदि स्वयं अपने ज्ञान को अंतरोन्मुख करे तो वह ज्ञान अपने अनंत धर्मों को स्वामीरूप से जानता है अर्थात् स्वयं अपने आत्मा को स्वद्रव्यरूप से जानता है और वह ज्ञान ही अपने को परमानंद का कारण होता है। इसके अतिरिक्त अपने आत्मा को स्वद्रव्यरूप से जानने के लिए किसी पर का ज्ञान काम नहीं आता। प्रमेय भी स्वयं ही है और प्रमाण ज्ञान भी अपना ही है।

धर्म अनंत हैं, किन्तु वस्तु एक ही है, नय अनंत हैं, किन्तु प्रमाण एक ही है।

अनंत नय हैं, वे सब एक श्रुतज्ञान प्रमाण में समा जाते हैं, श्रुतज्ञान प्रमाण से नय पृथक् नहीं रह जाता, अनंतधर्म हैं, वे सब एक वस्तु में समा जाते हैं, वस्तु का एक भी धर्म पृथक् नहीं रह जाता। प्रमाणपूर्वक स्वानुभव द्वारा ही आत्मद्रव्य अपने को प्रमेय होता है। अनंत धर्म और अनंत नय हैं – ऐसा बतलाया अवश्य है, किन्तु अनुभव में उन धर्मों का अथवा नयों का भेद नहीं रहता, अभेद हो जाते हैं। एक अभेद श्रुतप्रमाण स्वानुभव से सम्पूर्ण वस्तु को जानता है। श्रुतज्ञान में अनंतनयरूप से भेद हैं किन्तु प्रमाणरूप से वह अभेद है, उसीप्रकार वस्तु में अनंत धर्मरूप से भेद हैं और वस्तुरूप से एक अभेद है। जिसप्रकार वस्तु में अभेद और भेद ऐसे दो प्रकार पड़ते हैं, उसीप्रकार उसे जाननेवाले ज्ञान में भी अभेद और भेद अर्थात् प्रमाण और नय – ऐसे दो प्रकार छद्मस्थ के होते हैं। *क्रमशः*

आचार्यदेव परिचय शृंखला

भगवान आचार्यदेव श्री ब्रह्मदेवजी

अध्यात्मकला के मर्मज्ञ आचार्य ब्रह्मदेवजी अध्यात्म जगत में प्रसिद्ध हैं। भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव के प्राकृतत्रय की श्री जयसेनाचार्यदेव ने, जो टीका रची; ऐसे आचार्य ब्रह्मदेवजी की शैली, आचार्य जयसेनजी (सप्तम) जैसी होने से, सम्भव है, कि आचार्य जयसेनजी को आचार्य ब्रह्मदेवजी रचित द्रव्यसंग्रह ही टीका प्राप्त हुई हों। उन टीकाओं की आचार्य जयसेनजी पर काफी असर हुई। आपने भी वही शब्दार्थ, नयार्थ, मतार्थ, आगमार्थ और तात्पर्यार्थ—ऐसे पाँच-पाँच अर्थों से सभर टीका की है। आपकी शैली, भाषा आदि आचार्य जयसेनजी (सप्तम) वत् होने से किसी-किसी को शंका हो जाती है, कि आचार्य जयसेनजी व आचार्य ब्रह्मदेवजी एक ही हों। आप जयसेनाचार्य से पूर्ववर्ती होने चाहिए, क्योंकि जयसेनाचार्य ने अपनी टीका में द्रव्यसंग्रह का आधार दिया है।

विद्वानों का मत है, कि आप ब्रह्मचर्य में अड़िग होने से आपको 'ब्रह्म' नामक उपाधि मिली थी। आप बालब्रह्मचारी थे और देवजी आपका नाम था। कई विद्वान आपका नाम 'ब्रह्मदेवजी' मानते हैं, 'देवजी' नहीं। आपने बृहद् द्रव्यसंग्रह की टीका लिखी है, उसमें लिखा है, कि 'पहले भगवान नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव द्वारा सोमनाम के राजश्रेष्ठि के निमित्त मालवदेश के आश्रमनामक नगर के मुनिसुव्रत चैत्यालय में 25 गाथात्मक द्रव्यसंग्रह के लघुरूप में रचे जाने और बाद में विशेष तत्त्वपरिज्ञानार्थ उन्हीं आचार्य नेमिचन्द्र के द्वारा बृहद्द्रव्यसंग्रह की रचना हुई। उस बृहद्द्रव्यसंग्रह के अधिकारों के विभाजनपूर्वक यह वृत्ति आरम्भ की जाती है'। साथ में यह भी सूचित किया है, कि उस आश्रम नाम का यह नगर महामण्डलेश्वर के अधिकार में था और सोम नाम का राजश्रेष्ठि भाण्डागार आदि अनेक नियोगों

का अधिकारी होने के साथ-साथ तत्त्वज्ञानरूप सुधारस का पिपासु था'।

इस पर से विद्वान अनुमान करते हैं, कि पूर्व में उल्लखित सभी घटनाएँ उनके समाने घटी हैं। अत: भगवान नेमिचन्द्र सिद्धान्तिकदेव, ब्रह्मदेवजी व राजा भोज सम-सामयिक थे। द्रव्यसंग्रह के इन टीकांशों से स्पष्ट ज्ञात होता है, कि द्रव्यसंग्रह व उसकी टीका की रचना—दोनों राजा भोज के काल में रची गई थी।

आपने अपनी टीकाओं अनेक आचार्यों के ग्रंथों के उद्धरण आधाररूप से दिये हैं। जिससे यह स्पष्ट होता है, कि आप बहु श्रुताभ्यासी तो थे ही, पर चारों अनुयोग के ज्ञाता भी थे, क्योंकि आपने अपने ग्रंथ चारों अनुयोग के शास्त्रों का प्रमाण दिया है।

आपने (1) बृहद् द्रव्यसंग्रह टीका, (2) परमात्माप्रकाश टीका, (3) कार्तिकेयानुप्रेक्षा टीका, (4) तत्त्वदीपक, (5) ज्ञानदीपक, (6) प्रतिष्ठातिलक, (7) कथाकोश ग्रंथों की रचना की है।

आपका समय भोज के समय के करीब होने से, ईसा की 11वीं शताब्दी के अन्तिम पाद होना माना जाता है। वह श्री जयसेनाचार्यजी (सप्तम) के निकट पूर्ववर्ती समय ही गिनना चाहिए।

'बृहद् द्रव्यसंग्रह टीका' के रचयिता आचार्य ब्रह्मदेवजी को कोटि कोटि वन्दन।

भावलिङ्गी मुनि अर्थात् चलते-फिरते परमेश्वर

अहो! भावलिङ्गी मुनि अर्थात् चलते-फिरते परमेश्वर! जो भीतर आनन्द के झूले में झूलते हों और पञ्च महाव्रत का राग उठे, उसे विष मानते हों, अहा! जिनके दर्शन बड़े भाग्य से प्राप्त होते हों, जो आनन्द की खेती कर रहे हों **... वह धन्य दशा अलौकिक है। गणधरों का नमस्कार जिसे पहुँचता हो, उस दशा की क्या बात!**

(- द्रव्यदृष्टि जिनेश्वर, 1113, पृष्ठ 249)

प्रेरक-प्रसंग

चरित्र बल की पराकाष्ठा

एक बार शिवाजी महाराज के एक सेनापति रण में विजय प्राप्त करने के पश्चात् एक यवन कन्या की अपने साथ ले आये, ताकि वह उसे शिवाजी महाराज को एक अनुपम भेंट देकर प्रसन्न कर सकें। वह शिवाजी महाराज के सम्मुख उपस्थित हुआ और बोला—'महाराज! हमने किला जीतकर यवनों को भगा दिया है।'

'तुम वीर हो, तुमसे ऐसी ही अपेक्षा थी।' शिवाजी बोले।'

'महाराज! इस विजय की खुशी में हम आपके लिए उपहार लाये हैं।' सेनापति बोला।

'कैसा उपहार सेनापति?'

'महाराज! यह है उपहार।' यवन कन्या को उपस्थित करते हुए सेनापति बोला। प्रखर-बुद्धि शिवाजी महाराज उसकी कुचेष्टा को भाँप गये और तेवर बदलते हुए सेनापति से बोले—'अगर तूने रण में विजय प्राप्त नहीं की होती तो आज मैं तुम्हारी कुचेष्टा के कारण कठोर दण्ड देता। मेरी आँखों के सामने से हट जाओ। मुझे तुमझे ऐसी अपेक्षा न थी।'

दूसरे सेनापति को आदेश दिया कि यवन युवती को शृंगार कर महल में ले आओ। आदेशानुसार सेनापति ने वैसा किया। युवती भय के कारण थरथरा रही थी। शिवाजी महाराज कुछ समय तक उसकी और निहारते रहे, फिर युवती से बोले—'देवी, काश! मेरी माताजी इतनी सुन्दर होती तो मैं भी इतना सुन्दर होता। यवन बाला! डरो मत, तुम मेरी माता के समान हो। मेरी दृष्टि में प्रत्येक नारी नैसर्गिक रूप से माँ है, फिर मेरे देश की संस्कृति पराभूत को विवश नहीं करती।'

शिवाजी महाराज ने उस यवन बाला को उचित भेंट देकर ससम्मान उसके स्वजनों के पास पहुँचा दिया। ऐसे सर्वोत्तम उदाहरण केवल भारतीयों में मिलते हैं।

शिक्षा- जीवन में चारित्र-बल ही सबसे बड़ा बल है। चारित्र की उज्ज्वलता से ही व्यक्ति महान बनता है।

साभार : बोध कथायें

जिस प्रकार–उसी प्रकार में छिपा रहस्य

जैसे– पानी का कलश होता है, उस कलश का आकार पानी के आकर से भिन्न है और अन्दर पानी भरा है, उसका भले ही कलश जैसा हो परन्तु वह पानी का आकार कलश से भिन्न आकार है। पानी कलश नहीं कलश पानी नहीं।

ऐसे ही– यह शरीर और इसमें विराजमान आत्मा है। शरीर का आकार आत्मा से भिन्न है तथा आत्मा भले ही शरीर प्रमाण हो लेकिन उस का आकार शरीर से भिन्न है। आत्मा शरीर और शरीर आत्मा नहीं।

जैसे– लाखों करोड़ों गुनी पीपर होने पर भी प्रत्येक पीपर में पूरी–पूरी ताकत है और पूरी–पूरी प्रगट होती है।

वैसे ही– अनन्त आत्मायें है तथापि एक–एक आत्मा में परिपूर्ण शक्ति आनन्द आदि भरे है आर अनेको को प्रगट भी हो गये है, हो भी रहे हैं और होते भी रहेंगे।

जैसे– पीपर को घोटने से दस –बीस –चालीस–पचास –त्रेसठ पहरी चरपराहट प्रगट हुई फिर चौसठ पहरी प्रगट हुई वह त्रेसठ में से नहीं आयी है वह तो अन्दर शक्ति में से आयी है।

उसी प्रकार– आत्मा साधना से ज्ञान की बढ़ोतरी होती है वह वर्तमान मति, श्रुत ज्ञान में से नहीं आयी वह तो आत्मा में ज्ञान गुण की शक्ति में से आयी है। केवल ज्ञान भी उसी शक्ति में से प्रगट होता है।

जैसे– नमक, मीठा,कड़वा, कषायला आदि क्षेत्र तथा काल से नहीं बदलते, नमक किसी भी देश में कभी भी ले जाओ हमेशा खारा ही रहता है।

उसी प्रकार– आत्मा का धर्म अर्थात् स्वभाव काल अथवा क्षेत्र से नहीं बदलता। चौथा काल अथवा पंचम काल तथा भरत क्षेत्र अथवा विदेह क्षेत्र से आत्म धर्म नहीं बदलता।

जैसे– किसान को अनाज के साथ भूसा बिना इच्छा के ही मिलता है, भूसे की प्रार्थना करना व्यर्थ ही है।

उसी प्रकार– मनुष्य को आत्म पवित्रता के साथ पुण्य तो भूसे की तरह मिलता ही है। उसकी इच्छा करना व्यर्थ ही है।

जिस प्रकार– सूरज के सामने खड़े होकर प्रकाश तथा ताप तो बिना इच्छा किये ही मिल जाते है, पेड़ के पास छाया तो बिना इच्छा के ही मिल जाती है।

क्रमशः

संकलन – प्रो० पुरुषोत्तमकुमार जैन, रुड़की

समाचार-दर्शन

तीर्थधाम मङ्गलायतन में
श्रुतपंचमी महापर्व के अवसर पर गोष्ठी सम्पन्न

तीर्थधाम मङ्गलायतन : श्रुतपंचमी के अवसर पर ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी, मंगलवार, 15 जून 2021 को ऑनलाईन सम्पन्न हुई। जिसमें विगत 5 दिसम्बर 2020 से तीर्थधाम मङ्गलायतन ने षट्खण्डागम वाचना के रूप में अपूर्व इतिहास रचा। इस पावन प्रसंग पर बाहुबली जिनमन्दिर एवं महावीर जिनमन्दिर में ताम्रपत्र पर षट्खण्डागमजी उत्कीर्ण कराके पण्डित कमलजी बोहरा, श्रीमती मधु जैन, श्री मनोजजी मुजफ्फरनगर, श्रीमती लाडकंवरजी धर्मपत्नी स्व. श्री गम्भीरमलजी, श्री मनीषजी धनोप्या परिवार कोटा, श्रीमती मोहिनीदेवी धर्मपत्नी स्व. श्री नेमिचन्दजी, श्री विकासजी कोठिया परिवार कोटा आदि के माध्यम से विराजमान किये गये। तत्पश्चात् पूजन, श्रुतपंचमी विधान का कार्यक्रम रखा गया। कार्यक्रम का संचालन डॉ. विवेक जैन, पण्डित ऋषभ शास्त्री जैन रिसर्च सेन्टर एवं स्वाध्यायप्रेमी ग्रुप छिन्दवाड़ा द्वारा किया गया। साथ ही द्रोणगिरि सिद्धायतन, शाश्वत्धाम एवं अनेक साधर्मीजन इस कार्यक्रम में सम्मिलित हुए।

दोपहरकालीन एवं सायंकालीन सत्र में षट्खण्डागमजी / श्रुत पंचमी पर्व पर गोष्ठी का आयोजन किया गया। जिसकी अध्यक्षता बालब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन, मुख्य अतिथि श्री कमलजी वोहरा, कोटा; मंगलाचरण श्रीमती शीतल वी. शाह लन्दन, श्री पवन जैन आदि का उद्बोधन, वक्ताओं में पण्डित जे.पी. दोशी, डॉ. संजीव गोधा, जयपुर; डॉ. जयन्तीलाल जैन, मङ्गलायतन विश्वविद्यालय; श्रीमती अनुराधाजी कोलकाता, डॉ. विमलाजी नागपुर, श्रीमती डॉ. ममता जैन, उदयपुर, श्रीमती प्रियंकाजी, बेंगलोर; श्रीमती अल्का जैन, गुना; श्रीमती ज्योति जैन, उज्जैन; श्रीमती ऊषा जैन, श्रीमती तिलकमणि जैन, इन्दौर; कु० आरूषी जैन दिल्ली, पण्डित अशोक लुहाड़िया, पण्डित सुधीर शास्त्री, डॉ. सचिन्द्र शास्त्री आदि ने अपना वक्तव्य प्रस्तुत किया। संचालन मङ्गलार्थी अनुभव जैन द्वारा किया गया।

वैराग्य समाचार

मेरठ – श्री मुकेशचन्द्र जैन का कोरोना महामारी से शान्तिपरिणामपूर्वक देहपरिवर्तन हो गया है। आप रेलवे विभाग से लगभग तीन वर्ष पूर्व रिटायर्ड हुए थे। आप अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन मेरठ के सक्रिय सदस्य और मुमुक्षु मण्डल मेरठ के अध्यक्ष, तीर्थधाम चिदायतन हस्तिनापुर के महासचिव। आप पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के अनन्य भक्त पण्डित कैलाशचन्दजी के शिष्य थे। वहीं से आपको तत्त्वज्ञान के प्रति समर्पण का भाव आया। आपका जीवन सदाचारमय था। नवनिर्माणाधीन तीर्थधाम चिदायतन के आप नींव के पत्थर थे। आपकी सक्रियता, मिलनसारता, चिदायतन की रचना के लिये आधार प्रदान करनेवाली थी। तीर्थधाम मङ्गलायतन परिवार के अभिन्न अंग थे। आप स्वाध्यायप्रिय, वात्सल्य के धनी, शान्तस्वभावी, मृदुभाषी, अथक परिश्रम करनेवाले एक कुशल कार्यकर्ता थे। आपका पूरा परिवार भी तत्त्वज्ञान को समर्पित एवं प्रचार-प्रसार में लगा हुआ है। तीर्थधाम मङ्गलायतन ऐसे समर्पित भव्यात्मा को खोकर अपनी अपूरणीय क्षति अनुभव करता है। दिवंगत आत्मा शीघ्र अभ्युदय को प्राप्त हो – ऐसी मंगल भावना है।

गढ़ाकोटा – श्रीमती चन्द्रानीदेवी का शान्तपरिणाम से देहपरिवर्तन हो गया है। आप डॉ. सचिन्द्र जैन एवं पण्डित सौरभ शास्त्री की दादी थीं।

रतलाम – पण्डित सिद्धार्थकुमार दोशी का शान्तपरिणाम से देहपरिवर्तन हो गया है। आप पण्डित जे.पी. दोशी के पिताश्री थे। आदरणीय पण्डितजी बहुत ही उत्साही, सरल चित्त, हंसमुख, तत्त्वप्रेमी व्यक्तित्व के धनी थे। आपने बाल्यावस्था से ही माता-पिता से प्राप्त धार्मिक संस्कारों को आजीवन निभाया। आपने अपने सुपुत्रों आदरणीय जे. पी. दोशी और राजेन्द्रजी मुम्बई को भी तत्त्वज्ञान के संस्कार दिए जो कि उनकी चौथी पीढ़ी तक भी पल्लवित और पुष्पित हो रहे हैं। आपका तीर्थधाम मङ्गलायतन के प्रति अगाध प्रेम था।

सोनगढ़ – श्रीमती लागूबेन का शान्तपरिणाम से देहपरिवर्तन हो गया है। आप स्वर्गीय चिमनभाई ठाकरसी की धर्मपत्नी थीं।

दिवंगत आत्माएँ शीघ्र ही मोक्षमार्ग प्रशस्त कर अभ्युदय को प्राप्त हो—ऐसी भावना मङ्गलायतन परिवार व्यक्त करता है।

श्रुतपंचमी के अवसर पर ताम्रपत्र पर उत्कीर्ण षट्खण्डागमजी ग्रन्थराज

श्रुतपंचमी के अवसर पर ताम्रपत्र पर
षट्खण्डागमजी उत्कीर्ण कराके
विराजमान कराते
पण्डित कमलजी बोहरा,
श्रीमती मधु जैन, कोटा

Regn. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2018-20

हम भी उस ही पन्थ के पथिक

अहो! धन्य यह मुनिदशा!! मुनिराज फरमाते हैं कि हम तो चिदानन्दस्वभाव में झूलनेवाले हैं; हम इस संसार के भोग हेतु अवतरित नहीं हुए हैं। अब हम अपने आत्मस्वभाव में प्रवृत्त होते हैं। अब हमारे स्वरूप में विशेष लीन होने का अवसर आया है। अन्तर आनन्दकन्दस्वभाव की श्रद्धासहित उसमें रमणता हेतु जागृत हुए हमारे भाव में अब भङ्ग नहीं पड़ना है। अनन्त तीर्थङ्करों ने जिस पन्थ में विचरण किया, हम भी उस ही पन्थ के पथिक हैं।

(-जिणसासणं सव्वं, 75, पृष्ठ 4)

पं. सं. : DELBIL/2001/4685
स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक पवन जैन द्वारा **मङ्गलायतन** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। सम्पादक : डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन।

मङ्गलायतन
श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)
Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust
Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)
Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22
info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com